पीर पराई नेताओं का जीवनसूत्र क्यों नहीं बनता?

हमारी राजनीति एक त्रासदी बनती जा रही है। राजनेता सत्ता के लिये सब कुछ करने लगा और इसी होड़ में राजनीति के आदर्श ही भूल गया, यही कारण है देश की फिजाओं में विषमताओं और विसंगतियों का जहर घुला हुआ है और कहीं से रोशनी की उम्मीद दिखाई नहीं देती। ऐसा लगता है कि आदमी केवल मृत्यु से ही नहीं, जीवन से भी डरने लगा है, भयभीत होने लगा है। ठीक उसी प्रकार भय केवल गरीबी में ही नहीं, अमीरी में भी है। यह भय है राजनीतिक भ्रष्टाचारियों से, अपराध को मंडित करने वालों से, सत्ता का दुरुपयोग करने वालों से।

देश दुख, दर्द और संवेदनहीनता के जटिल दौर से रूबरू है, समस्याएं नये-नये मुखौटे ओढ़कर डराती है, भयभीत करती है। समाज में बहुत कुछ बदला है, मूल्य, विचार, जीवन-शैली, वास्तुशिल्प सब में परिवर्तन है। ये बदलाव ऐसे हैं, जिनके भीतर से नई तरह की जिन्दगी की चकाचैंध तो है, पर धड़कन सुनाई नहीं दे रही है, मुश्किलें, अड़चने, तनाव-ठहराव की स्थितियों के बीच हर व्यक्ति अपनी जड़ों से दूर होता जा रहा है। चुनाव प्रक्रिया बहुत खर्चीली होती जा रही है।

ईमानदार होना आज अवगुण है। अपराध के खिलाफ कदम उठाना पाप हो गया है। धर्म और अध्यात्म में रुचि लेना साम्प्रदायिक माना जाने लगा है। किसी अनियमितता का पर्दाफाश करना पूर्वाग्रह माना जाता है। सत्य बोलना अहम् पालने की श्रेणी में आता है। साफगोही अव्यावहारिक है। भ्रष्टाचार को प्रश्रय नहीं देना समय को नहीं पहचानना है। चुनाव के परिप्रेक्ष्य में इन और ऐसे बुनियादी सवालों पर चर्चा होना जरूरी है। आखिर कब तक राजनीतिक स्वार्थों के नाम पर नयी गढ़ी जा रही ये परिभाषाएं समाज और राष्ट्र को वीभत्स दिशाओं में धकेलती रहेगी? विकासवाद की तेज आंधी के नाम पर हमारा देश, हमारा समाज कब तक भुलावे में रहेगा? चुनाव के इस महायज्ञ में सुधार की, नैतिकता की बात कहीं सुनाई नहीं दे रही है? दूर-दूर तक कहीं रोशनी नहीं दिख रही है। बड़ी अंधेरी और घनेरी रात है। न आत्मबल है, न नैतिक बल।

महान भारत के निर्माण के लिए आयोज्य यह चुनावरूपी महायज्ञ आज 'महाभारत' बनता जा रहा है, मूल्यों और मानकों की स्थापना का यह उपक्रम किस तरह लोकतंत्र को खोखला करने का माध्यम बनता जा रहा है, यह गहन चिन्ता और चिन्तन का विषय है। विशेषत: आर्थिक विसंगतियों एवं विषमताओं को प्रश्रय देने का चुनावों में नंगा नाच होने लगा है और हर दल इसमें अपनी शक्ति का बढ़-चढ़कर प्रदर्शन कर रहे है।

जरा याद कीजिए जब संसद में यह मांग उठी थी कि गैर सरकारी संगठनों को मिली 50 हजार करोड़ रुपए से अधिक की रकम का लेखा-जोखा कराया जाना चाहिए तो इसके क्या मायने हो सकते थे? यह मांग लोकसभा में किसी और ने नहीं बल्कि विपक्ष के दिग्गज नेता श्री लालकृष्ण अडवानी ने उठाई थी मगर यह बात आई-गई हो गई।

बात केवल गैर सरकारी संगठनों को मिली इस राशि की ही नहीं बल्कि विदेशों से मिलने वाले चंदों की भी है। आज सवाल बहुत बड़ा है और वह है भारत की राजनीति को प्रत्यक्ष विदेशी प्रभाव से बचाना। आम आदमी पार्टी ने जिन कथित अनिवासी भारतीयों से चंदा इकट्ठा करके भारत की राजनीतिक व्यवस्था में 'हवाला कारोबार' का दरवाजा खोला है वह हमारी समूची चुनाव प्रणाली के लिए आने वाले समय में चुनौती बन सकता है।

जिस तरह वर्तमान सरकार ने विदेशी कंपनियों के लिये दरवाजे खोले हैं उसका भारत की अर्थव्यवस्था पर तो असर पड़ ही रहा है साथ ही साथ इसका असर राजनीति पर पड़े बिना किसी सूरत में नहीं रह सकता है और ये सब उसी के प्रारंभिक लक्षण हैं। बात वेदांता समूह की कंपनी स्टरलाइट इंडिया की हो या डाऊ कैमिकल्स के स्वामित्व वाली यूनियन कार्बाइड कंपनी की -विदेशी कंपनियां भारत में अपनी सहायक कंपनियां स्थापित करती हैं और अपने उत्पादों से भारत के बाजारों को लाद कर भारी मुनाफा कमाती हैं। निश्चित रूप से ये कंपनियां भारत की व्यापार प्रणाली को अपने पक्ष में रखने के लिए राजनीति को प्रभावित करने की कोशिश करेंगी और चुनाव का समय उनके लिये सबसे उपयुक्त हैं।

क्या कभी सत्तापक्ष या विपक्ष से जुड़े लोगों ने या नये उभरने वाले राजनीतिक दावेदारों ने, और आदर्श की बातें करने वाले लोगों ने, अपनी करनी से ऐसा कोई अहसास दिया है कि उन्हें सीमित निहित स्वार्थों से ऊपर उठा हुआ राजनेता समझा जाए? यहां नेताओं के नाम उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं न ही राजनीतिक दल महत्वपूर्ण है, महत्वपूर्ण है यह तथ्य कि इस तरह का कूपमण्डूकी नेतृत्व कुल मिलाकर देश की राजनीति को छिछला ही बना रहा है। सकारात्मक राजनीति के लिए जिस तरह की नैतिक निष्ठा की आवश्यकता होती है, और इसके लिए राजनेताओं में जिस तरह की परिपक्वता की अपेक्षा होती है, उसका अभाव एक पीड़ादायक स्थिति का ही निर्माण कर रहा है। और हम हैं कि ऐसे नेताओं के निर्माण में लगे हैं!

चुनावों से लोकतांत्रिक प्रक्रिया की शुरूआत मानी जाती है, पर आज चुनाव लोकतंत्र का मखौल बन चुके हैं। चुनावों में वे तरीके अपनाएं जाते हैं जो लोकतंत्र के मूलभूत आदर्शों के प्रतिकूल पड़ते हैं। इन स्थितियों से गुरजते हुए, विश्व का अव्वल दर्जे का कहलाने वाला भारतीय लोकतंत्र आज अराजकता के चैराहे पर है। जहां से जाने वाला कोई भी रास्ता निष्कंटक नहीं दिखाई देता। इसे चैराहे पर खड़े करने का दोष जितना जनता का है उससे कई गुना अधिक राजनैतिक दलों व नेताओं का है जिन्होंने निजी व दलों के स्वार्थों की पूर्ति को माध्यम बनाकर इसे बहुत कमजोर कर दिया है। आज ये दल, ये लोग इसे दलदल से निकालने की क्षमता खो बैठे हैं।

महाभारत की लड़ाई में सिर्फ कौरव-पांडव ही प्रभावित नहीं हुए थे। उस युद्ध की चिंगारियां दूर-दूर तक पहुंची थीं। साफ दिख रहा है कि इस महाभारत में भी कथित अराजक राजनीतिक एवं आर्थिक ताकतें अपना असर दिखाने की कोशिश कर रही है,जिसके दूरगामी परिणाम होंगे। इन स्थितियों में अब ऐसी कोशिश जरूरी है जिसमें 'महान भारत' के नाम पर 'महाभारत' की नई कथा लिखने वालों के मंतव्यों और मनसूबों को पहचाना जाए। अर्जुन की एकाग्रता वाले नेता चाहिए भारत को, जरूरी होने पर गलत आचरण के लिए सर्वोच्च नेतृत्व पर वार करना भी गलत नहीं है।

बात चाहे फिर सोनियाजी की हो या आडवाणीजी की, यहां बात चाहे मुलायम-माया की हो या केजरीवाल की। यह सही है कि आज देश में ऐसे दलों की भी कमी नहीं है, जो नीति नहीं, व्यक्ति की महत्वाकांक्षा के आधार पर बने हैं, लेकिन नीतियों की बात ऐसे दल भी करते हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था के लिए कथनी और करनी की असमानता चिंता का विषय होना चाहिए। हालांकि पिछली आधी सदी में हमारे राजनीतिक दलों ने नीतियों-आदर्शों के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए हैं, जो जनतांत्रिक व्यवस्था के मजबूत और स्वस्थ होने का संकेत देते हों, फिर भी यह अपेक्षा तो हमेशा रही है कि नीतियां और नैतिकता कहीं-न-कहीं हमारी राजनीति की दिशा तय करने में कोई भूमिका निभाएंगी। भले ही यह खुशफहमी थी, पर थी। अब तो ऐसी खुशफहमी पालने का मौका भी नहीं दिख रहा। लेकिन यह सवाल पूछने का मौका आज है कि नीतियां हमारी राजनीति का आधार कब बनेंगी? सवाल यह भी पूछा जाना जरूरी है कि अवसरवादिता को राजनीति में अपराध कब माना जाएगा?

यह अपने आप में एक विडम्बना ही है कि सिद्धांतों और नीतियों पर आधारित राजनीति की बात करना आज एक अजूबा लगता है। हमारी राजनीति के पिछले कुछ दशकों का इतिहास लगातार होते पतन की कथा है। यह सही है कि व्यक्ति के विचार कभी बदल भी सकते हैं, पर रोज कपड़ों की तरह विचार बदलने को किस आधार पर सही कहा जा सकता है? सच तो यह है कि आज हमारी राजनीति में सही और गलत की परिभाषा ही बदल गई है- वह सब सही हो जाता है जिससे राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति होती हो और वह सब गलत हो जाता है जो आम आदमी के हितों से जुड़ा होता है, यह कैसा लोकतंत्र बन रहा है, जिसमें 'लोक' ही लुप्त होता जा रहा है?

जब एक अकेले व्यक्ति का जीवन भी मूल्यों के बिना नहीं बन सकता, तब एक राष्ट्र मूल्यहीनता में कैसे शक्तिशाली बन सकता है? अनुशासन के बिना एक परिवार एक दिन भी व्यवस्थित और संगठित नहीं रह सकता तब संगठित देश की कल्पना अनुशासन के बिना कैसे की जा सकती है? इन चुनावों का संदेश सरकार और कर्णधारों के लिये होना चाहिए कि शासन संचालन में एक रात में 'ओवर नाईट' ही बहुत कुछ किया जा सकता है। अन्यथा 'जैसा चलता है–चलने दो' की नेताओं की मानसिकता और कमजोर नीति ने जनता की तकलीफें ही बढ़ाई हैं। ऐसे सोच वाले सत्तालोलुपों को पीड़ित व्यक्ति का दर्द नहीं दिखता, भला उन्हें खोखला होता राष्ट्र कैसे दिखेगा?

नरसी मेहता रचित भजन "वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे" गांधीजी के जीवन का सूत्र बन गया था, लेकिन यह आज के नेताओं का जीवनसूत्र क्यों नहीं बनता? क्यों नहीं आज के राजनेता पराये दर्द को, पराये दु:ख को अपना मानते? क्यों नहीं जन-जन की वेदना और संवेदनाओं से अपने तार जोड़ते? बर्फ की शिला खुद तो पिघल जाती है पर नदी के प्रवाह को रोक देती है, बाढ़ और विनाश का कारण बन जाती है। देश की प्रगति में आज ऐसे ही तथाकथित राजनीतिक बाधक तत्व उपस्थित हैं, जो जनजीवन में आतंक एवं संशय पैदा कर उसे अंधेरी राहों में, निराशा और भय की लम्बी काली रात के साये में धकेल रहे हैं। कोई भी व्यक्ति, प्रसंग, अवसर अगर राष्ट्र को एक दिन के लिए ही आशावान बना देते हैं तो वह महत्वपूर्ण होते हैं। पर यहां एक दिन की अजागरूकता पांच साल यानी अठारह सौ पचीस दिनों को अंधेरों के हवाले करने की तैयारी होती है।

यह कैसी जिम्मेदारी निभा रहे हैं हम वोटर होकर और कैसा राजनीतिक नेतृत्व निर्मित हो रहा है? चारों

ओर अंधेरा ही अंधेरा व्याप्त है। हमारा राष्ट्र नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में मनोबल के दिवालिएपन के कगार पर खड़ा है। और हमारा नेतृत्व गौरवशाली परम्परा, विकास और हर खतरों से मुकाबला करने के लिए तैयार है, का नारा देकर अपनी नेकनीयत का बखान करते रहते हैं। पर उनकी नेकनीयती की वास्तविकता किसी से भी छिपी नहीं है।

प्रेषक :
(ललित गर्ग)
ई-253, सरस्वती कुंज अपार्टमेंट
25, आई0पी0 एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-92 फोन : 22727486, मो. 09811051133

.